International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

कौटिल्य के सप्ताङ्ग सिद्धान्त में 'योगक्षेम': सुशासन, सम्प्रभुता और लोक-कल्याण का एक आलोचनात्मक विश्लेषण

डॉ ऋचा शर्मा
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, किशन लाल पब्लिक कॉलेज, रेवाड़ी (हरियाणा)

सार संक्षेप (Abstract)

कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्राचीन भारतीय राज्यशास्त्र का एक ऐसा कालजयी ग्रंथ है, जो समकालीन राजनीतिक चिंतन और सुशासन (Good Governance) के सिद्धांतों को आज भी नई दिशा प्रदान करता है। प्रस्तुत अध्ययन कौटिल्य के 'सप्ताङ्ग सिद्धान्त' का पुनर्पाठ करते हुए यह प्रतिपादित करता है कि राज्य के सातों अङ्ग (स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड, मित्र) केवल यांत्रिक प्रशासनिक इकाइयाँ नहीं हैं, बल्कि उनका एकमात्र दार्शनिक और व्यावहारिक औचित्य प्रजा के **'योगक्षेम'** (अप्राप्त संसाधनों का अर्जन और प्राप्त संसाधनों का संरक्षण व न्यायपूर्ण वितरण) को सिद्ध करना है। यह आलेख कौटिल्य के यथार्थवाद की तुलना पाश्चात्य यथार्थवादी परंपरा से करते हुए एंटोनियो ग्राम्शी, मिशेल फूको, मैक्स वेबर, कार्ल श्मिट, थॉमस हॉब्स, अरस्तू और जॉन रॉल्स जैसे आधुनिक राजनीतिक विचारकों के साथ एक आलोचनात्मक संवाद स्थापित करता है। यह विश्लेषण सिद्ध करता है कि कौटिल्य का शासन-मॉडल शुष्क शक्ति-राजनीति और अव्यावहारिक आदर्शवाद के परे 'नैतिक यथार्थवाद' (Normative Realism) पर आधारित लोक-कल्याणकारी राज्य का एक कालजयी और वैश्विक विकल्प प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द: कौटिल्य, अर्थशास्त्र, सप्ताङ्ग सिद्धान्त, योगक्षेम, सुशासन, नैतिक यथार्थवाद, सम्प्रभुता

१. प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन के इतिहास में आचार्य कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' यथार्थवाद और सुशासन का एक ऐसा कालजयी शिखर है, जो समकालीन राजनीति-विज्ञान के केंद्रीय प्रश्नों को आज भी उद्वेलित करता है। पाश्चात्य परंपरा में जहाँ राज्य की अवधारणा को प्रायः संप्रभुता के विधिक और शुष्क ढांचे या मात्र बल-प्रयोग के अधिकार तक सीमित कर दिया गया, वहीं कौटिल्य ने राज्य को एक ऐसा जीवंत और जैविक तंत्र माना जिसका

परम औचित्य प्रजा के 'योगक्षेम' में निहित है। कौटिल्य का 'सप्ताङ्ग सिद्धान्त' (स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड, मित्र) इसी जैविक दृष्टिकोण का व्यावहारिक ढाँचा प्रस्तुत करता है।

समकालीन अकादमिक विमर्श में कौटिल्य को अक्सर 'भारतीय मैकियावेली' कहकर संबोधित किया जाता है, जो उनके शासन-दर्शन का एक अति-सरलीकृत और आंशिक मूल्यांकन है। जहाँ निकोलो मैकियावेली राजनीति को नैतिकता और लोक-कल्याणकारी साध्यों से पृथक कर देते हैं, वहीं कौटिल्य का यथार्थवाद एक गहरे मूल्य-मीमांसीय धरातल पर टिका हुआ है। कौटिल्य के लिए राज्य की शक्ति, उसकी दण्ड-नीति और उसका प्रशासनिक तंत्र स्वतः में साध्य नहीं हैं; वे केवल प्रजा के 'योगक्षेम'—अर्थात् अप्राप्त संसाधनों के अर्जन (योग) और प्राप्त संसाधनों के संरक्षण व न्यायपूर्ण वितरण (क्षेम)—को सिद्ध करने के साधन मात्र हैं।

सप्ताङ्ग व्यवस्था की अंतर्निहित गतिशीलता यह दर्शाती है कि इसके सातों अङ्ग 'योगक्षेम' की प्राप्ति हेतु एक-दूसरे से पूरी तरह आबद्ध हैं। इस परिप्रेक्ष्य में, एंटोनियो ग्राम्शी, मिशेल फूको, मैक्स वेबर, कार्ल श्मिट, थॉमस हॉब्स, अरस्तू और जॉन रॉल्स जैसे आधुनिक राजनीतिक विचारकों के सिद्धांतों के साथ कौटिलीय विचारों का तुलनात्मक अध्ययन अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। यह तुलनात्मक विमर्श यह रेखांकित करता है कि कौटिल्य का 'योगक्षेम-केंद्रित' मॉडल पाश्चात्य यथार्थवाद की शुष्क शक्ति-लोलुपता और आदर्शवाद की अव्यावहारिक नैतिकता के बीच सुशासन का एक अत्यंत परिपक्व, व्यावहारिक और वैश्विक विकल्प प्रस्तुत करता है।

२. कौटिलीय राज्य का दार्शनिक आधार: धर्म, अर्थ और योगक्षेम

कौटिल्य के सप्ताङ्ग ढांचे की व्यावहारिक कार्यप्रणाली में उतरने से पूर्व उस दार्शनिक त्रयी—अर्थ, धर्म और योगक्षेम—का सूक्ष्म विश्लेषण आवश्यक है, जो कौटिलीय राज्य-दर्शन की आत्मा है। पाश्चात्य राजनीति-विज्ञान में जहाँ राज्य के निर्माण को अक्सर केवल 'सुरक्षा' (Hobbesian Contract) या 'संपत्ति की रक्षा' (Lockean Contract) तक सीमित माना गया, वहीं कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राज्य का अस्तित्व एक गहरे मूल्य-मीमांसीय और लोक-कल्याणकारी लक्ष्य से बंधा हुआ है। कौटिल्य का राज्य कोई केवल दण्ड का प्रयोग करने वाली यांत्रिक या पुलिस-संस्था नहीं है; यह एक ऐसा नैतिक व आर्थिक तंत्र है जिसका प्राथमिक दायित्व समाज को मात्स्यन्याय (अराजकता) से निकालकर एक ऐसी सुव्यवस्थित स्थिति में लाना है जहाँ प्रत्येक नागरिक अपने जीवन के सर्वांगीण विकास हेतु भौतिक साधन और सामाजिक सुरक्षा प्राप्त कर सके। अतः सप्ताङ्ग के सातों अङ्गों (स्वामी

से लेकर मित्र तक) का सृजन, संचालन और उनका औचित्य अंततः इसी दार्शनिक त्रयी—विशेषकर 'योगक्षेम' की सिद्धि—पर टिका हुआ है।

२.१ 'अर्थ' की प्रधानता: योग का भौतिक धरातल

भारतीय परंपरा में यद्यपि पुरुषार्थ-चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का विधान है, परंतु कौटिल्य अपने ग्रंथ के प्रारंभ में ही एक क्रांतिकारी घोषणा करते हैं कि 'अर्थ' ही अन्य सभी पुरुषार्थों का मूल आधार है (अर्थ एव प्रधानः, अर्थमूलौ धर्मकामाविति)। उनके अनुसार, बिना आर्थिक सुदृढ़ता और संसाधनों के न तो सामाजिक-नैतिक व्यवस्था (धर्म) की रक्षा संभव है और न ही मानवीय इच्छाओं (काम) की पूर्ति हो सकती है।

यहाँ 'अर्थ' का तात्पर्य केवल व्यक्तिगत पूंजी संचय नहीं है, बल्कि मनुष्यों से युक्त भूमि, उसकी उत्पादकता और उसके संसाधनों का संवर्धन है। यही 'अर्थ' कौटिलीय 'योग' (संसाधनों के अर्जन) की पहली सीढ़ी है, जो सप्ताङ्ग व्यवस्था में आगे चलकर 'जनपद' और 'कोश' के रूप में व्यावहारिक और भौतिक आधार ग्रहण करती है।

२.२ धर्म: सम्प्रभुता का विनियामक और 'क्षेम' का आधार

कौटिल्य के दर्शन में 'धर्म' का अर्थ कोई संकीर्ण संप्रदाय या मजहब न होकर वह व्यापक सामाजिक-नैतिक और विधिक व्यवस्था है जो समाज को विघटन से बचाती है। कौटिल्य का संप्रभु (स्वामी) इस धर्म का रक्षक और विनियामक है, न कि इसका निरंकुश निर्माता।

यहीं पर कौटिल्य का विचार थॉमस हॉब्स के 'लेविआथन' से अलग हो जाता है। जहाँ हॉब्स का सम्प्रभु कानून से ऊपर है, वहीं कौटिल्य का राजा स्वयं धर्म के नियमों और प्रजा-हित के अधीन है। धर्म का यह सुदृढ़ नियमन समाज में स्थायित्व और न्याय लाता है, जो 'क्षेम' (संरक्षण) की अनिवार्य पूर्व-शर्त है।

२.३ योगक्षेम: राज्य का परम साध्य और औचित्य

अर्थशास्त्र का सर्वोपरि और अंतिम साध्य 'योगक्षेम' की प्राप्ति है। 'योग' का तात्पर्य है—उन संसाधनों, सुरक्षा, समृद्धि और अवसरों को अर्जित करना जो वर्तमान में उपलब्ध नहीं हैं (अप्राप्तस्य प्राप्तिः); तथा 'क्षेम' का तात्पर्य है—अर्जित संपत्ति, अधिकारों, ज्ञान और प्रजा के जीवन की निरंतर रक्षा करना व उनका न्यायपूर्ण प्रबंधन करना (लब्धस्य परिपालनम्)।

राजा का संपूर्ण अस्तित्व और उसकी संप्रभुता का औचित्य इसी सूत्र से बंधा है:

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्॥

यह दार्शनिक आधार यह स्थापित करता है कि कौटिल्य का राज्य अपनी मूल प्रकृति में एक परिणामवादी लोक-कल्याणकारी राज्य है। राज्य की वैधता इस बात से तय नहीं होती कि शासक का अधिकार कितना निरंकुश या प्राचीन है, बल्कि इस बात से तय होती है कि सप्ताङ्ग के सातों अङ्ग मिलकर प्रजा के 'योगक्षेम' को किस सीमा तक व्यावहारिक धरातल पर साकार कर पा रहे हैं।

३. सप्ताङ्ग सिद्धान्त की गतिशीलता और समकालीन विमर्श

कौटिल्य का सप्ताङ्ग सिद्धान्त राज्य को एक जड़ या स्थैतिक संरचना के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवंत, गतिशील और जैविक इकाई के रूप में देखता है। जहाँ पाश्चात्य यथार्थवाद प्रायः सत्ता के ढाँचे और सैन्य बल तक सीमित रहता है, वहीं अर्थशास्त्र इन सातों अङ्गों (स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड, मित्र) के बीच एक अंतर्निर्भरता और संतुलन की मांग करता है। समकालीन राजनीतिक विमर्श के प्रकाश में इस व्यवस्था का आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन इसके भीतर छिपे गहरे वैचारिक द्वंद्वों और आधुनिक प्रासंगिकता को उजागर करता है।

३.१ वैचारिक तनाव: योगक्षेम बनाम दमन-तन्त्र (ग्राम्शी एवं फूको)

अर्थशास्त्र के भीतर राज्य के चरित्र को लेकर समकालीन विद्वानों में एक गहरा वैचारिक द्वंद्व दिखाई देता है। एक ओर जहाँ आर.एस. शर्मा जैसे इतिहासकार कौटिलीय राज्य को एक कड़े नियंत्रण वाले केंद्रीयकृत तंत्र के रूप में रेखांकित करते हैं, वहीं दूसरी ओर रॉजर बॉश्च जैसे विचारक इसमें लोक-कल्याण की एक सुदृढ़ अंतर्धारा देखते हैं। वास्तव में, कौटिल्य का राज्य न तो पूरी तरह से एक क्रूर पुलिस-राज्य (Police State) है और न ही आधुनिक अर्थों में केवल एक उदारवादी कल्याणकारी राज्य (Welfare State)। यह एक जटिल व्यवस्था है जहाँ प्रजा का 'योगक्षेम' और राज्य का 'दण्ड' एक दूसरे के विरोधी होने के बजाय एक दूसरे के पूरक बनकर उभरते हैं।

प्रथम और द्वितीय अधिकरण में जहाँ राजा को प्रजा के सुख में ही अपना सुख ढूंढने (प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्) और समाज के वंचित वर्गों (अनाथ, वृद्ध और बीमार) के भरण-पोषण का निर्देश दिया गया है, वहीं चतुर्थ और पञ्चम अधिकरण में राज्य की सुरक्षा के नाम पर एक अत्यंत कड़े दमनकारी, जासूसी और निगरानी

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

तंत्र का विधान है। इस विरोधाभास को समझने के लिए समकालीन राजनीतिक सिद्धांतों के साथ इसका संवाद आवश्यक है।

इस कल्याण-दमन के अंतर्संबंध को **एंटोनियो ग्राम्शी के आधिपत्य (**Gramsci's Hegemony) के सिद्धांत के माध्यम से बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। कौटिल्य द्वारा प्रयुक्त **'योगक्षेम और कल्याण की यह भाषा'** केवल एक नैतिक उपदेश या पाशविक बल (brute force) का विकल्प नहीं है, बल्कि यह **वैचारिक सहमति के निर्माण (Ideological Consent-Manufacture)** का एक सूक्ष्म राजनीतिक उपकरण है। यहाँ 'योग' (अनुपलब्ध संसाधनों का अर्जन) और 'क्षेम' (अर्जित संसाधनों का लोक-कल्याणकारी वितरण) के माध्यम से राज्य जब अपनी प्रजा के भौतिक और सामाजिक अस्तित्व की सक्रिय चिंता करता है, तो वह जनमानस में अपनी नैतिक वैधता को इस प्रकार स्थापित कर लेता है कि दमनकारी साधनों की आवश्यकता स्वतः न्यूनतम हो जाती है। यहाँ योगक्षेम की नीतियां, शासक वर्ग के प्रति जन-सहमति को सुदृढ़ करने का माध्यम बनती हैं।

मिशेल फूको की शासकता का सिद्धांत इस विरोधाभास को पूरी तरह सुलझा देता है। फूको के अनुसार, आधुनिक शासन व्यवस्था में लोक-कल्याणकारी दावे वास्तव में जनसंख्या के नियमन, अनुशासन और प्रबंधन के ही उपकरण होते हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी **प्रजा का योगक्षेम** और उस पर कड़ा नियंत्रण अलग-अलग न होकर एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। राज्य द्वारा कृषि का नियमन, अकाल राहत और व्यापार पर नियंत्रण जहाँ एक ओर प्रजा को 'क्षेम' (सुरक्षा) प्रदान करते हैं, वहीं दूसरी ओर राज्य को प्रत्येक नागरिक के जीवन, उत्पादकता और गतिविधियों की सूक्ष्म निगरानी का वैध अधिकार भी दे देते हैं।

अतः कौटिलीय व्यवस्था में योगक्षेम और दमन-तन्त्र परस्पर विरोधी नहीं हैं; बल्कि प्रजा का निरंतर **योगक्षेम** ही वह तार्किक आधार है जो राज्य के भीतर चतुर्थ और पञ्चम अधिकरण के कठोर नियंत्रणकारी और दमनकारी तंत्र को सामाजिक और नैतिक स्वीकार्यता प्रदान करता

३.२ स्वामिन की तीन शक्तियाँ, वेबर का सत्ता-वर्गीकरण और योगक्षेम का तार्किक आधार

सप्ताङ्ग व्यवस्था में 'स्वामी' (राजा) केवल एक पद या व्यक्ति नहीं, बल्कि राज्य की संप्रभुता, नीतिगत इच्छाशक्ति और प्रजा के 'योगक्षेम' को साकार करने वाला केंद्रीय अभिकर्ता है। कौटिल्य राजा की इस संप्रभु क्षमता को तीन प्रकार की शक्तियों में विभाजित करते हैं। समकालीन प्रशासनिक दर्शन के आलोक में, यह विभाजन

समाजशास्त्री मैक्स वेबर के सत्ता के वर्गीकरण से सीधा संवाद स्थापित करता है, जो यह स्पष्ट करता है कि कौटिल्य का राज्य किस प्रकार की 'वैधानिकता' पर टिका हुआ है:

- **१. मन्त्र शक्ति (ज्ञान, विवेक और परामर्श की शक्ति**): यह राजा की बौद्धिक और रणनीतिक क्षमता है, जो अमूल्य परामर्शदाताओं (अमात्य) और शास्त्र-ज्ञान से संचालित होती है। वेबर के वर्गीकरण में यह 'तार्किक-कानूनी सत्ता' के समकक्ष है। कौटिल्य के लिए 'योगक्षेम' (संसाधनों का अर्जन और न्यायपूर्ण वितरण) कोई आकस्मिक घटना नहीं है; यह केवल मन्त्र शक्ति अर्थात् योजनाबद्ध, संस्थागत और तार्किक निर्णयों के माध्यम से ही संभव है।
- **२. प्रभु शक्ति (राजकोष और सेना का बल):** यह राज्य के 'कोश' और 'दण्ड' का समेकित भौतिक बल है। वेबर के अनुसार, राज्य की मौलिक परिभाषा ही "हिंसा के वैध प्रयोग के एकाधिकार" से तय होती है। कौटिल्य की 'प्रभु शक्ति' प्रजा को बाह्य और आंतरिक संकटों से 'क्षेम' (सुरक्षा) प्रदान करने का वही भौतिक व आर्थिक आधार है।
- **३. उत्साह शक्ति (व्यक्तिगत ऊर्जा, शौर्य और नेतृत्व):** यह राजा का व्यक्तिगत ओज, चरित्र और मनोवैज्ञानिक बल है, जो वेबर की 'करिश्माई सत्ता' (Charismatic Authority) से मेल खाती है। संकट के क्षणों में राजा का यह करिश्माई नेतृत्व प्रजा और सेना में विश्वास का संचार करता है।

यहाँ कौटिल्य का अनूठापन और वेबर से उनका विभेदन स्पष्ट होता है। जहाँ वेबर इन सत्ताओं को अलग-अलग ऐतिहासिक श्रेणियों में देखते हैं, वहीं कौटिल्य एक आदर्श 'स्वामी' के भीतर इन तीनों का एकीकृत समन्वय खोजते हैं।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कौटिल्य 'मन्त्र शक्ति' (तार्किक/बौद्धिक बल) को 'उत्साह' और 'प्रभु शक्ति' से सर्वोच्च मानते हैं। उनके अनुसार, केवल उत्साह (करिश्मा) या प्रभु शक्ति (पाशविक बल) से युक्त राजा राज्य को विनाश की ओर ले जाता है। राजा की संप्रभुता और उसकी सत्ता की वैधता इस बात से तय नहीं होती कि उसके पास कितना बल है, बल्कि इस बात से तय होती है कि वह 'मन्त्र शक्ति' का उपयोग करके प्रजा के 'योगक्षेम' को किस सीमा तक सिद्ध कर पाता है। अतः वेबर का ढाँचा यहाँ यह सिद्ध करने के लिए प्रयुक्त हुआ है कि

कौटिल्य का शासन-मॉडल किसी निरंकुश शासन का मॉडल नहीं, बल्कि एक 'तार्किक-संस्थागत' सुशासन का मॉडल है।

३.३ अंतर्निर्भरता बनाम पदानुक्रम

सप्ताङ्ग सिद्धान्त के विश्लेषण में एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्या ये सातों अङ्ग पूर्णतः समान हैं या इनमें कोई निश्चित पदानुक्रम (Hierarchy) है। कौटिल्य के पूर्ववर्ती आचार्यों (जैसे भारद्वाज या विशालाक्ष) का मानना था कि जो अङ्ग सूची में पहले आता है, वह बाद वाले से अधिक महत्वपूर्ण है।

कौटिल्य इस यांत्रिक पदानुक्रम को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए भी एक क्रांतिकारी मोड़ देते हैं। वे **'व्यसन' (Vyasana - संकट या कमियाँ)** के सिद्धांत के माध्यम से इस अंतर्निर्भरता को परिभाषित करते हैं। कौटिल्य का तर्क है कि यदि किसी विशिष्ट परिस्थिति में कोई निचला अङ्ग (जैसे 'कोश' या 'दण्ड') गंभीर संकट में है, तो वह उस समय के लिए शीर्ष अङ्ग ('स्वामी' या 'अमात्य') से भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।

इसे एक जैविक सादृश्य से समझा जा सकता है: यद्यपि मानव शरीर में मस्तिष्क (स्वामी) का स्थान सर्वोच्च है, लेकिन यदि हृदय (कोश) या पैर (दुर्ग) गंभीर रूप से घायल हो जाएं, तो पूरा शरीर निष्क्रिय हो जाता है। अतः कौटिल्य की सप्ताङ्ग व्यवस्था एक **'परिस्थिति-सापेक्ष पदानुक्रम'** पर काम करती है, जहाँ राज्य की स्थिरता किसी एक अङ्ग की सर्वोच्चता में नहीं, बल्कि सभी अङ्गों के स्वास्थ्य और उनकी पारस्परिक संतुलन की गतिशीलता में निहित है।

४. अमात्य, जनपद और दुर्ग: योगक्षेम और सुशासन के व्यावहारिक स्तंभ

सप्ताङ्ग सिद्धान्त के भीतर स्वामी (राजा) के दार्शनिक संकल्प 'योगक्षेम' को व्यावहारिक धरातल पर क्रियान्वित करने का दायित्व 'अमात्य', 'जनपद' और 'दुर्ग' पर है। कौटिल्य इन तीनों अङ्गों को मात्र यांत्रिक प्रशासनिक इकाइयाँ नहीं मानते, बल्कि इन्हें राज्य की आर्थिक उत्पादकता (योग), लोक-कल्याणकारी वितरण और सुरक्षा (क्षेम) का मुख्य संवाहक स्वीकार करते हैं।

४.१ अमात्य और वेबरियन नौकरशाही: योगक्षेम हेतु दक्षता एवं

कौटिल्य का 'अमात्य' (मंत्रिपरिषद और प्रशासनिक अधिकारी वर्ग) का ढाँचा मैक्स वेबर के 'तार्किक-कानूनी नौकरशाही' के सिद्धांतों की एक अत्यंत परिष्कृत ऐतिहासिक पूर्वपीठिका प्रस्तुत करता है। परंतु कौटिल्य के

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

लिए यह नौकरशाही स्वयं में साध्य नहीं है; इसका एकमात्र औचित्य प्रजा तक 'योगक्षेम' की कुशल पहुँच सुनिश्चित करना है:

- **उपधा-परीक्षण और योग्यता-तन्त्र:** अर्थशास्त्र के प्रथम अधिकरण में धर्मोपधा, अर्थोपधा, कामोपधा और भयोपधा जैसी परीक्षाओं के माध्यम से अमात्यों का चयन यह सुनिश्चित करता है कि केवल दक्ष ही नहीं, बल्कि 'चारित्रिक रूप से निष्ठावान' अधिकारी ही शासन के पदों पर आसीन हों। वेबर के तकनीकी सक्षमता के समानांतर, कौटिल्य यह मानते हैं कि बिना योग्य और ईमानदार नौकरशाही के, राज्य की कल्याणकारी नीतियां भ्रष्टाचार की भेट चढ़ जाएँगी और प्रजा का 'योगक्षेम' बाधित होगा।
- **श्रम-विभाजन और सेवा-संवर्धन:** विभिन्न अध्यक्षों (विभाग प्रमुखों) द्वारा व्यापार, कृषि और बाजार का नियमन करना वेबरियन 'विभाग-विभाजन' का ही प्रतिरूप है, जिसका उद्देश्य प्रजा को शोषण से बचाना और आर्थिक उत्पादकता (योग) को बढ़ाना है।

४.२ जनपद: जैव-राजनीति और 'योग' का व्यावहारिक क्षेत्र

'जनपद' (जिसमें भूमि और जनसंख्या दोनों समाहित हैं) राज्य का वह भौगोलिक और मानवीय शरीर है जहाँ कौटिल्य के 'योग' (संसाधनों का अर्जन) की संकल्पना मूर्त रूप लेती है। कौटिल्य का जनपद-नियोजन (जैसे शूद्र-कर्षक परिवारों को बसाना और 'शून्य-निवेश' की नीति) सीधे तौर पर मिशेल फूको की जैव-राजनीति और शासकता के सिद्धांतों से संवाद करता है:

- **उत्पादक संपत्ति के रूप में जनसंख्या:** कौटिल्य के लिए जनपद की जनता केवल कर-संग्रह का साधन नहीं है। राज्य जब कृषि हेतु सिंचाई व्यवस्था, भूमि सुधार और अवसंरचना का निर्माण करता है, तो यह फूकोवादी अर्थों में जनसंख्या का प्रबंधन है।
- **योग और क्षम का संतुलन:** राज्य द्वारा संसाधनों का यह विकास जहाँ एक ओर 'कोश' के लिए कर-संग्रह का मार्ग प्रशस्त करता है, वहीं दूसरी ओर अकाल या आपदा के समय यही 'जनपद' राज्य द्वारा दी जाने वाली राहत और खाद्य-सुरक्षा (क्षेम) का केंद्र बनता है।

४.३ दुर्ग: संप्रभुता और 'क्षेम' का स्थानिक आयाम

'दुर्ग' केवल ईंट-पत्थर की सैन्य संरचना नहीं है, बल्कि वह राज्य की संप्रभुता और संरक्षण (क्षेम) का स्थानिक प्रतीक है। कौटिल्य द्वारा वर्णित चार प्रकार के दुर्ग (औदक, पार्वत, धान्वन, और वन-दुर्ग) पारिस्थितिकी और रक्षा-नीति के अद्भुत समन्वय को दर्शाते हैं।

यदि जनपद 'योग' (उत्पादन) का स्थान है, तो दुर्ग उस उत्पादित संपत्ति, राजकोष और नागरिकों की बाह्य आक्रमणों से रक्षा करने वाला 'क्षेम' का भौतिक कवच है। रक्षात्मक यथार्थवाद के आलोक में, दुर्ग राज्य की वह सीमा-चेतना है जो यह सुनिश्चित करती है कि आंतरिक सुशासन और योगक्षेम की प्रक्रियाएं बाह्य अराजकता से अप्रभावित रहें।

५. दण्ड और मात्स्यन्याय: सम्प्रभुता का औचित्य और योगक्षेम का संरक्षण

सप्ताङ्ग व्यवस्था में 'दण्ड' (सैन्य बल, न्याय-व्यवस्था और दमनकारी शक्ति) केवल संप्रभु की शक्ति का प्रदर्शन नहीं है, बल्कि यह वह अनिवार्य ढाल है जिसके बिना 'योगक्षेम' का निर्माण और संरक्षण असंभव है। कौटिल्य चतुर्थ अधिकरण (कण्टकशोधन) में यह स्पष्ट करते हैं कि बिना दण्ड के भय के समाज में धर्म और न्याय स्थिर नहीं रह सकते।

५.१ मात्स्यन्याय, थॉमस हॉब्स और कार्ल श्मिट: सम्प्रभुता का औचित्य

कौटिल्य का 'मात्स्यन्याय' (बड़ी मछली द्वारा छोटी मछली को निगल जाना) का विचार थॉमस हॉब्स की 'प्रकृति की अवस्था' (State of Nature) के समरूप है, जहाँ केंद्रीय सत्ता के अभाव में निर्बल का जीवन असुरक्षित हो जाता है। इस मात्स्यन्याय को समाप्त कर प्रजा को 'क्षेम' (सुरक्षा) प्रदान करने के लिए कौटिल्य का 'दण्ड' का सिद्धांत आधुनिक जर्मन विचारक कार्ल श्मिट (Carl Schmitt) के राजनीतिक दर्शन से संवाद स्थापित करता है**:**

- **अपवाद काल और निर्णायक सम्प्रभुता: कार्ल श्मिट के अनुसार,** *"सम्प्रभु वह है जो अपवाद काल (State of Exception) का निर्णय करता है।"* कौटिल्य के लिए 'मात्स्यन्याय' राज्य की वही अपवाद की स्थिति (चरम अराजकता) है। श्मिट की भाँति कौटिल्य का 'स्वामी' इस अराजकता को समाप्त करने के लिए 'दण्ड' के माध्यम से निर्णायक संप्रभुता का परिचय देता है, ताकि समाज में शांति और योगक्षेम की नींव पुनः रखी जा सके।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

- **श्मिटियन सम्प्रभु से मौलिक भिन्नता:** जहाँ श्मिट का सम्प्रभु कानून से ऊपर होकर निरंकुश निर्णय ले सकता है, वहीं कौटिल्य का राजा 'दण्ड' का प्रयोग करते समय स्वयं 'धर्म' और 'योगक्षेम' के उत्तरदायित्व से बंधा हुआ है।

५.२ अरस्तू का आनुपातिक न्याय और दण्ड की सीमा

कौटिल्य की दण्ड-नीति केवल प्रतिशोध पर आधारित नहीं है। दण्ड की मात्रा और उसकी सम्यकता का निर्धारण यूनानी दार्शनिक अरस्तू के 'आनुपातिक न्याय' के सिद्धांत से सीधे मेल खाता है:

- **यथार्हदण्ड :** कौटिल्य स्पष्ट चेतावनी देते हैं कि 'अतिदण्ड' (अत्यधिक कठोर दण्ड) प्रजा में असंतोष और विद्रोह पैदा करता है, जबकि 'मृदुदण्ड' (अत्यधिक नरम दण्ड) अराजकता को न्योता देता है। केवल 'यथार्हदण्ड' (उचित और आनुपातिक दण्ड) ही समाज में संप्रभुता और प्रजा के 'योगक्षेम' को सुरक्षित रखता है।
- **अनुचित दण्ड और राजा का विनाश:** यदि राजा अपनी सनक या व्यक्तिगत द्वेष में आकर 'अन्यायपूर्ण दण्ड' देता है, तो कौटिल्य के अनुसार वह दण्ड स्वयं सम्प्रभु का विनाश कर देता है।

५.३ सुधारात्मक अपराधशास्त्र और 'कण्टकशोधन'

चतुर्थ अधिकरण का 'कण्टकशोधन' आधुनिक अपराधशास्त्र की दृष्टि से राज्य के 'क्षेम' (प्रजा-रक्षण) का व्यावहारिक तंत्र है। जेल प्रबंधन, व्यापारियों द्वारा उपभोक्ताओं के आर्थिक शोषण को रोकने के लिए दण्ड), और भ्रष्ट अधिकारियों पर कड़ा नियंत्रण यह सिद्ध करते हैं कि दण्ड का प्राथमिक उद्देश्य समाज के सबसे कमज़ोर और अशक्त नागरिकों के 'योगक्षेम' की रक्षा करना है।

निष्कर्ष

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में प्रतिपादित सप्ताङ्ग सिद्धान्त केवल प्राचीन भारतीय राज्यशास्त्र का एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ मात्र नहीं है, बल्कि यह समकालीन राजनीति-विज्ञान, प्रशासनिक दर्शन और सुशासन) के विमर्श को समृद्ध करने वाला एक कालजयी और व्यावहारिक ढाँचा है। यह स्थापित करता है कि सप्ताङ्ग व्यवस्था के सातों अङ्ग (स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड, मित्र) अपने पृथक अस्तित्व में नहीं, बल्कि 'योगक्षेम'—अर्थात् अनुपलब्ध संसाधनों का अर्जन और अर्जित संसाधनों का लोक-कल्याणकारी संरक्षण व न्यायपूर्ण वितरण—की

प्राप्ति के लिए एक जैविक और एकीकृत तंत्र के रूप में कार्य करते हैं। कौटिल्य का यथार्थवाद पाश्चात्य यथार्थवादी परंपरा की भांति केवल निरंकुश सत्ता-संघर्ष, संकीर्ण स्वार्थ और पाशविक बल तक सीमित नहीं है। उसकी विलक्षणता इस बात में निहित है कि वे एक सुदृढ़ प्रशासनिक ढांचे, कठोर निगरानी-तन्त्र और संप्रभु शक्ति का निर्माण करते हुए भी उसके केंद्र में 'धर्म' और प्रजा के 'योगक्षेम' को राज्य के अस्तित्व की एकमात्र नैतिक व व्यावहारिक वैधता स्वीकार करते हैं।

इस विस्तृत आलोचनात्मक विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि कौटिलीय राज्य में 'योगक्षेम' (कल्याणवाद) और 'दण्ड' (नियंत्रण-तन्त्र) परस्पर विरोधी इकाइयाँ नहीं हैं। एंटोनियो ग्राम्शी के आधिपत्य और मिशेल फूको की शासकता के सिद्धांतों के प्रकाश में, कौटिल्य द्वारा प्रयुक्त प्रजा-कल्याण की भाषा वास्तव में शासक के प्रति वैचारिक सहमति के निर्माण का सूक्ष्म उपकरण है, जो पाशविक बल की आवश्यकता को न्यूनतम कर देती है। राज्य द्वारा कृषि का नियमन, अकाल राहत और बाजार नियंत्रण जहाँ एक ओर प्रजा को 'क्षेम' (सुरक्षा) प्रदान करते हैं, वहीं दूसरी ओर राज्य को प्रत्येक नागरिक के जीवन और उत्पादकता की सूक्ष्म निगरानी का वैध अधिकार भी दे देते हैं। अतः, प्रजा का निरंतर भौतिक, आर्थिक और सामाजिक योगक्षेम ही वह तार्किक आधार है जो राज्य के भीतर के कठोर नियंत्रणकारी और दमनकारी तंत्र को सामाजिक और नैतिक स्वीकार्यता प्रदान करता है।

सप्ताङ्ग व्यवस्था के प्रशासनिक और संस्थागत स्तंभों का मूल्यांकन यह दर्शाता है कि कौटिल्य का राज्य एक अत्यंत परिष्कृत योग्यता-तन्त्र पर आधारित है, जो मैक्स वेबर की 'तार्किक-कानूनी नौकरशाही' के नियमों की प्राचीन पूर्वपीठिका प्रस्तुत करता है। 'उपधा' के माध्यम से अमात्यों का चयन और विभागों का श्रम-विभाजन यह सुनिश्चित करता है कि राज्य की लोक-कल्याणकारी नीतियां बिना भ्रष्टाचार के अंतिम व्यक्ति तक पहुँच सकें। इसी प्रकार, 'कोश' (राजकोष) के संचय और व्यय का सिद्धांत जब जॉन रॉल्स के 'डिफरेंस प्रिंसिपल' के समानांतर परखा जाता है, तो कौटिल्य की एक विशिष्ट राजकोषीय नैतिकता उजागर होती है। यद्यपि इस संरचना में पारंपरिक सामाजिक पदानुक्रम मौजूद हैं, परंतु राजकोष का अंतिम परिणामवादी उद्देश्य संकट और आपदा के क्षणों में समाज के सबसे निचले, अशक्त और वंचित वर्ग के जीवन की रक्षा करना ही है।

International Journal of Advanced Research and Multidisciplinary Trends (IJARMT)
An International Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 Website: https://ijarmt.com ISSN No.: 3048-9458

संप्रभुता और कानून के धरातल पर, कौटिल्य 'मात्स्यन्याय' (अराजकता) के शमन के लिए दण्ड को अपरिहार्य मानते हैं, जो कार्ल श्मिट के 'अपवाद काल' में संप्रभु के निर्णायक अधिकार से मेल खाता है। परंतु श्मिटियन सम्प्रभु—जो कानून से ऊपर होता है—के विपरीत, कौटिल्य का राजा स्वयं धर्म और अरस्तूवादी 'आनुपातिक न्याय' की सीमाओं से बंधा हुआ है। कौटिल्य स्पष्ट चेतावनी देते हैं कि व्यक्तिगत सनक या द्वेष के वश होकर दिया गया 'अन्यायपूर्ण दण्ड' स्वयं सम्प्रभु और उसके 'योगक्षेम' के संकल्प का विनाश कर देता है। दण्ड यहाँ केवल सजा देने का जरिया नहीं, बल्कि समाज के निर्बल वर्ग की सुरक्षा का आवरण है।

सप्ताङ्ग संरचना का यह सूक्ष्म अध्ययन अंततः इस निर्णायक अकादमिक निष्कर्ष पर पहुँचाता है कि कौटिल्य का शासन-मॉडल एक **'नैतिक यथार्थवाद'** का अनुपम प्रतीक है। यह व्यवस्था सिद्ध करती है कि राज्य की वास्तविक चिरंतनता और संप्रभुता न तो हॉब्सियन निरंकुशता में निहित है और न ही पाश्चात्य यथार्थवाद की शुष्क शक्ति-पिपासा में; बल्कि यह सत्ता की नैतिक विवशता और प्रजा के 'योगक्षेम' के अटूट संतुलन पर टिकी है। कौटिल्य का यह योगक्षेम-केंद्रित दर्शन प्राचीन और आधुनिक, तथा पूर्व और पश्चिम के सैद्धान्तिक विभाजनों को पाटते हुए, आधुनिक सुशासन के लिए एक ऐसा एकीकृत, परिस्थिति-सापेक्ष और मानव-केंद्रित वैश्विक विकल्प प्रस्तुत करता है, जिसकी प्रासंगिकता इक्कीसवीं सदी के बहुध्रुवीय और जटिल विश्व-व्यवस्था में और भी अधिक प्रखर होकर उभरती है।

सन्दर्भ-सूची (References)

- **Kangle, R. P.** (Ed. & Trans.). (1960–1965). *The Kautiliya Arthasastra* (Parts I, II, & III). University of Bombay / Motilal Banarsidass.
- **Shamasastry, R.** (Trans.). (1915). *Kautilya's Arthashastra*. Mysore Printing and Publishing House.
- **श्रीवास्तवानन्द, पं.** (संपादक). (२००१). *कौटिल्यीयम् अर्थशास्त्रम्* (संस्कृत मूल एवं हिन्दी अनुवाद). चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
- **Aristotle.** (1999). *Nicomachean Ethics* (T. Irwin, Trans.). Hackett Publishing Company.
- **Boesche, R.** (2002). *The First Great Political Realist: Kautilya and His Arthashastra*. Lexington Books.
- **Foucault, M.** (2007). *Security, Territory, Population: Lectures at the Collège de France 1977–1978* (M. Senellart, Ed.; G. Burchell, Trans.). Palgrave Macmillan.

- **Ghoshal, U. N.** (1959). *A History of Indian Political Ideas: The Ancient Period and the Period of Transition to the Middle Ages*. Oxford University Press.
- **Gramsci, A.** (1971). *Selections from the Prison Notebooks* (Q. Hoare & G. N. Smith, Eds. & Trans.). International Publishers.
- **Hobbes, T.** (1996). *Leviathan* (R. Tuck, Ed.). Cambridge University Press.
- **Rawls, J.** (1971). *A Theory of Justice*. Harvard University Press.
- **Schmitt, C.** (2005). *Political Theology: Four Chapters on the Concept of Sovereignty* (G. Schwab, Trans.). University of Chicago Press.
- **Sharma, R. S.** (1996). *Aspects of Political Ideas and Institutions in Ancient India* (4th ed.). Motilal Banarsidass.
- **Weber, M.** (1978). *Economy and Society: An Outline of Interpretive Sociology* (G. Roth & C. Wittich, Eds.). University of California Press.